# 21

# ऋग्वेद के नदी-सूक्त की नदियाँ तथा तीन सप्तसिन्धु

ठाकुर प्रसाद वर्मा

## ऋग्वेद : भूगोल और नदी-तन्त्र का उल्लेख

**ऋग्वेद** के *नदी-सूक्त* (10.75) का भौगोलिक महत्व काफी पहले ही पहचान लिया गया था। इसमें गंगा से लेकर अफगानिस्तान तक नदियों के नाम भौगोलिक क्रम में गिनाए गए हैं। यही नहीं वरन् पहले ही मन्त्र में सात-सात नदियों के तीन सप्तकों अर्थात् तीन सप्तसिन्धुओं की चर्चा कर दी गई है। लेकिन सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि विगत दो शताब्दियों में इनकी पहचान को लेकर कोई गम्भीर नहीं दिखता। सभी विद्वान् इन सभी नदियों को ब्रिटिश भारत की सिन्धु की सहायक नदियाँ बताकर अपने को कृतकृत्य मान लेते हैं तथा प्रत्येक की अलग-अलग भौगोलिक पहचान को गोल कर जाते हैं क्योंकि सूक्त में गिनाई गई नदियों की संख्या अधिक है और सिन्धु की सहायक नदियों की कम। इसके साथ ही वे ऋग्वेद में उल्लिखित सप्तसिन्धु को भी पंजाब में ही सीमित मानकर चलते हैं जिसके कारण **ऋग्वेद** तथा पुराणों से प्राप्त सूचनाओं की समुचित व्याख्या नहीं हो पाती। यदि उनकी वास्तविक पहचान की जाए तो उनमें पामीर तथा बल्ख तक की नदियों को गिनना पड़ेगा जो हमारे उपनिवेशवादी यूरोपीय इतिहासकारों को अनूकूल नहीं पड़ता था। हमारे भारतीय इतिहासकार अवसर के अनुसार चुप रहने की नीति पर चलते रहे। अतः इस विषय पर खोज बन्द रही। यहाँ हम इस विषय की चर्चा पहली बार कर रहे हैं। अतः पहचान संबंधी कुछ त्रुटियाँ सम्भव हैं जिन्हें आगे आने वाली पीढ़ी सुधार लेगी ऐसी आशा की जानी चाहिए।

हमारे शोध के अनुसार ऋग्वैदिक जन मेरु या पामीर क्षेत्र से न केवल भलीभाँति परिचित थे वरन् यही उनकी प्रारम्भिक कर्मभूमि भी रही है। मनु और इला की कथा का केन्द्र मेरु स्थित इलावृतवर्ष ही था तथा इन्द्र-वृत्र आदि के पराक्रम की भूमि भी यही रही है। यही नहीं **ऋग्वेद** तथा पुराणों के दधीचि ऋषि की कथा भी यहीं सम्पन्न हुई थी। पुराण बताते हैं कि प्रारम्भिक नदियाँ मेरु से ही निकलीं और चारों दिशाओं में गईं। ईरानी **अवेस्ता** में वर्णित *एरियानो वेइजो* भी यहीं था जिसे ईरानी पुराण-कथाओं के अनुसार *अहुर मज्द* ने सबसे पहले बनाया था। वेदों में उल्लिखित तीन सप्तसिन्धुओं में से एक सप्तसिन्धु प्रदेश यहीं था। इन सबकी चर्चा हमने कुछ विस्तार के साथ अन्यत्र भी की है।[1] यही प्रारम्भिक मानवीय गतिविधियों का केन्द्र भी रहा है।

पुराणों के भुवनकोश खण्डों में मेरु पर्वत के चारों ओर के पहाड़ों तथा उससे निकलने वाली नदियों के बारे में भी काफी विस्तार से लिखा गया मिलता है। लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि शताब्दियों ही नहीं सहस्राब्दियों के अन्तराल में धरती ने अपना चेहरा अनेक बार बदला है। इन भूगर्भिक परिवर्तनों के कारण इनके न केवल मार्ग बदल गए हैं तथा धाराएँ इधर से उधर हो गई हैं वरन् इनके नाम भी कई बार बदल चुके हैं जिससे पुराणों में दिये गये नामों के पहचान

संबंधी कठिनाइयाँ उठ खड़ी होती हैं। यही नहीं उत्तर समुद्र, जिसे आज *टीथस सी* कहा जाता है, जैसे कुछ सागर मिट गए हैं तथा कैस्पियन और अराल सागर जैसे कुछ धरती से घिरे हुए सागर अस्तित्व में आ गए हैं। साथ ही अनेक नदियों ने अपने मार्ग परिवर्तन कर लिये हैं। जैसे चक्षु/वक्षु या आमू दरया जो कभी कैस्पियन सागर में गिरती थी अब अराल सागर में गिरती है। पर्वतों के स्वरूप में भी अनेक परिवर्तन आये। पुराणों में इन नदियों का जो थोड़ा बहुत लेखा-जोखा सुरक्षित है उसकी भी चर्चा हम आगे करेंगे।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक लगता है कि वर्तमान में मानव सभ्यता के इतिहास को जिस प्रकार ईसापूर्व की मात्र दस सहस्राब्दियों के अन्दर सीमित कर दिया गया है वह पौराणिक साक्ष्यों के सामने धराशायी हो जाता है।

## गंगा का स्वर्ग से अवतरण

**सबसे पहले धरती पर जलावतरण–**नदियों के धरती पर अवतरण की पौराणिक कथा या गंगा के अवतरण को वैज्ञानिक पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए। इस सौरमण्डल ही नहीं वरन् सम्भवतः समस्त ब्रह्माण्ड में केवल हमारी पृथिवी ही ऐसी है जिसमें जलयुक्त वातावरण कैद है, जो इसके बाहर नहीं भाग सकता। धरती पर जल ही जीवन का स्रोत है इसे वैदिक ऋषियों ने न केवल पहचाना वरन् इसके धरती पर अवतरण की दैवी घटना को भी एक कथा के रूप में निरूपित किया जिसे *गंगा का अवतरण* कहा गया है। इसे हिमालय की भागीरथी गंगा की कथा से अलग मानना होगा। यह एक प्राकृतिक घटना है। पुराणों ने धरती के इतिहास के शैशवकाल में आकाश से (गंगा) जल का आकर्षण या अवतरण इन्हीं पर्वतों या मेरु के माध्यम से हुआ था ऐसा माना है। कहा गया कि विष्णु के चरणों से अवतरित होकर यह ब्रह्मा के कमण्डलु (अन्तरिक्ष या वातावरण) में समा गया। जब वहाँ से धरती पर गिरने को हुआ तो यह शंका हुई कि कहीं यह धरती को चीर कर उसमें समा न जाय अतः शिव ने अपने केशपाश (पर्वत) में उसे रोक लिया। यह आकाशीय जल पर्वतों पर उतर कर बर्फ के ग्लेशियर के रूप में जम गया जिसे किसी वृत्र या अहि (दोनों का अर्थ 'घेर लेना' होता है) की करतूत कह कर वर्णित किया गया है। इन्द्र नामक एक प्राकृतिक शक्ति उनको नष्ट करके जल को मुक्त कराता है और नदियों के रूप में पर्वतों से नीचे धरती पर प्रवाहित करता है। इस प्राकृतिक घटना को पौराणिक रचनाकारों ने इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि सामान्य जन इसे समझ तथा स्मरण कर सके। **ऋग्वेद** के अधिसंख्य सूक्तों में इन्द्र के द्वारा जल को मुक्त कराने की चर्चा की गई है जिससे पता लगता है कि प्रारम्भिक मानव नदियों के मीठे जल को कितना महत्व देता था। सभी प्रकार के सस्य तथा जीव जगत के लिये ये नदियाँ माता या गौ के समान थीं और उनका जल दूध की भाँति पौष्टिक कहा गया है। इनमें सुमेरु या मेरु (पामीर) को केन्द्र-स्थानीय माना गया है क्योंकि धरती पर वही सबसे पहले उत्थित हुआ तथा उस समय वही सबसे ऊँचा पर्वत था जो आकाशीय जल को आकर्षित कर सकता था। अन्य कसेर पर्वत (root mountains) क्रमशः बाद में उत्थित हुए। इन्द्र और वृत्र की कथाओं को मिथक न मानकर प्राकृतिक घटनाओं के रूप में विश्लेषित करने पर अधिक सार्थक ढंग से समझा जा सकता है।

## नदीसूक्त और नदियों के तीन सप्तक ( या तीन सप्तसिन्धु )

**ऋग्वेद** के दसवें मण्डल के 75वें सूक्त में सिन्धु की प्रशंसा में कुल 9 मन्त्र कहे गए हैं जिनमें पहला मन्त्र प्रस्तावना है तथा 2 से 4 तक और 7 से 9 तक सिन्धु की प्रशंसा में हैं। केवल पाँचवें और छठे मन्त्रों में अन्य नदियों के नाम

साक्षी के रूप में आते हैं जो भौगोलिक क्रम में तो हैं लेकिन उनकी पहचान के विषय में कठिनाई होने के कारण उनकी चर्चा ही नहीं की जाती या संक्षेप में भारत की सीमा में ही लक्षित कर निपटा दिया जाता है।

इस सूक्त के ऋषि सिन्धुक्षित प्रैयमेध हैं तथा देवता सिन्धु नहीं वरन् *नद्यः* अर्थात् सभी नदियों को कहा गया है। इसमें मुख्य रूप से सिन्धु की स्तुति है लेकिन गंगा से लेकर मेरु तक की अन्य नदियों को साक्ष्य बनाकर ऋषि वैदिक सभ्यता की भौगोलिक व्याप्ति का परिचय देते हैं। ऋषि प्रथम मन्त्र में ही कहते हैं कि "हे आपः विवस्वान के सदन में तुम्हारी उत्तम महिमा का वर्णन (मैं) करता रहता हूँ। जिसमें सात-सात नदियों के तीन चक्र अतिवेग से प्रवाहित होते रहते हैं। इनमें सिन्धु ही सबसे ओजसम्पन्न है।"

**प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः।**
**प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धु रोजसा॥ 1॥**[2]

यहाँ पर *विवस्वान के सदन* की बात कहकर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इसमें सात-सात नदियों के तीन क्षेत्रों का उल्लेख है। ऋषि द्वारा उन सभी क्षेत्रों का विवरण दिया जा रहा है जहाँ विवस्वान की सन्तति अथवा मानवमात्र रहते हैं। भाष्यकार *विवस्वान के सदन* का अर्थ *यजमान का घर* करते हैं तथा तीन सप्तकों को पृथिवी, आकाश और द्युलोक की सात-सात नदियों को माना है। यह आस्था की बात है। लेकिन एक इतिहासकार के लिए तो यह तत्कालीन जम्बुद्वीप का द्योतक है जहाँ विवस्वान मनु की संतानें रहती थीं। इसमें तीन सप्त-सिन्धुओं की बात कही गई है जिनसे ऋषि परिचित थे लेकिन उन्होंने इन तीनों का विवरण न देकर केवल सिन्धु नदी की प्रशंसा की है। अन्य नदियों के नाम साक्षी रूप में आये हैं जिनमें सिन्धु की कुछ सहायक नदियाँ भी शामिल हैं। अन्त में सिन्धु की महिमा का वर्णन करके सूक्त को समाप्त कर देते हैं। सम्भवतः यही ऋषि सिन्धुक्षित नाम की सार्थकता भी है।

इस जम्बुद्वीप के ऐतिहासिक शोध से भी हमें इन तीनों सप्त-सिन्धु क्षेत्रों की जानकारी मिलती है जिनका उल्लेख ऋषि ने पहले मन्त्र में कर दिया है। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे। इनमें एक भारतवर्ष में, दूसरा इलावृतवर्ष (अफगानिस्तान) में और तीसरा उत्तरकुरुवर्ष (सोवियत रूस) में है। इनमें तीसरा अभी भी इसी नाम से (रूसी भाषा में *सेमी रेच्यै* या सात नदियों का क्षेत्र) जाना जाता है। हमारा विचार है कि मूल सप्त-सिन्धु सुमेरु स्थित इलावृतवर्ष ही था जो अब अफगानिस्तान में है। आधुनिक विद्वान भारतवर्ष (अब पाकिस्तान) वाले को ही सप्त-सिन्धु करके प्रचारित करते हैं जिसके कारण काफी भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं। यद्यपि सिन्धु नाम इसी भारतीय नदी के लिए रूढ हो गया है जिसका श्रेय सम्भवतः ऋषि सिन्धुक्षित को देना चाहिये। प्रायः सभी विद्वान यह मानते हैं कि **ऋग्वेद** में सिन्धु नाम किसी भी नदी के लिए आता है लेकिन यह पूछा जा सकता है कि इस सिन्धु के होते हुए अफगानिस्तान के क्षेत्र को सप्त-सिन्धु मानने का क्या कारण है? इसका उत्तर यही हो सकता है कि ऋषि सिन्धुक्षित ने स्वयं इन तीनों का उल्लेख प्रथम मन्त्र में ही कर दिया है। अतः यह कोई नई खोज नहीं है। लेकिन इस प्रश्न का उत्तर रह ही जाता है कि मेरु क्षेत्र के सप्तसिन्धु मानने का क्या कारण है। इसका उत्तर आगे दिया जा रहा है।

नदियों को प्रवाहित करने का काम इन्द्र ने किया था। यही नहीं वरन् पृथिवी की आरम्भिक अवस्था में होने वाले प्राकृतिक उपद्रवों को शान्त करने का श्रेय भी उनको ही दिया जाता है। **ऋग्वेद** के दूसरे मण्डल के 15वें सूक्त में इन्द्र के पराक्रमों का वर्णन है जो उन्होंने सोम पीकर उत्साह से किये थे। इनमें उन्होंने सबसे पहले द्यौ तथा अन्तरिक्ष को बिना

स्तम्भों या थूनी लगाये स्थिर किया तथा पृथिवी धारण करके उसका विस्तार किया। अर्थात् धरती के प्रारम्भिक जीवन काल में आकाश से होने वाले ग्रावा वर्षा आदि विघ्नों को बन्द कराया तथा जल से बाहर निकली हुई पृथिवी का विस्तार किया। यह भी कहा गया है कि उन्होंने धरती को मापकर पूर्वाभिमुख बनाया तथा अपने वज्र से खोदकर सतत प्रवाहमान नदियों का मार्ग प्रशस्त किया। छठे मन्त्र में तो यहाँ तक कहा गया है कि इन्द्र ने अपने बल से सिन्धु को उत्तर की ओर प्रवाहित किया। यह उत्तर की ओर बहने वाली सिन्धु कौन सी थी, यह भी एक प्रश्न है जो यह संकेत करता है कि केवल पंजाब की सिन्धु को ही सिन्धु नहीं कहा जाता था। आठवें मन्त्र में कहा गया है कि 'इन्द्र ने अंगिराओं से प्रसन्न होकर *वल* (हिमनद या glaciers) के सुदृढ़ द्वारों को खोल दिया तथा उनके अवरोधों को दूर कर दिया।' वास्तव में *वल, वृत्र, अहि* आदि नाम हिमनदियों या ग्लेशियरों के ही हैं जिसको समझ लेने के बाद इन्द्र के कार्यों की व्याख्या सरलता से की जा सकती है। इन्द्र के ये कार्य उस समय के हैं जब धरती जीवों के रहने लायक बनने लगी थी तथा यह कार्य पौराणिक मान्यताओं के अनुसार उसी स्थान पर हुआ होगा जहाँ धरती पहले-पहल समुद्र से बाहर निकली थी अर्थात् सुमेरु या मेरु के आस-पास। अतः मूल या प्राथमिक सप्त-सिन्धु वहीं होना चाहिये। इस सम्बन्ध में भूगर्भिक सन्दर्भों तथा पौराणिक अनुश्रुतियों की चर्चा बाद में करेंगे।

अस्तु! यहाँ पर सिन्धु नदी की स्तुति में आगे के तीन मन्त्र इस प्रकार हैं :

**प्र तेऽरद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम्।**
**भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि॥ 2॥**
**दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्मुदियर्ति भानुना।**
**अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत॥ 3॥**
**अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः।**
**राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि॥ 4॥**

अर्थात् "हे सिन्धो! जिस समय तुम शस्यशाली प्रदेश की ओर चली उस समय वरुण ने तुम्हारे गमन के लिए विस्तृत मार्ग खोद कर बना दिए। तुम पृथिवी के ऊपर उत्तम मार्ग से होकर जाती हो जिसके कारण तुम इन जंगम प्राणियों के जीवन का मुख्य आधार होती हो।।। 2।। भूमि के ऊपर गर्जन करने वाला तुम्हारा शब्द आकाश को व्याप्त करता है; यह अनन्त आकाश को गर्जन से भर देता है। जिस समय सिन्धु वृषभ के समान प्रबल शब्द करता हुआ आता है उस समय यह विदित होता है कि आकाश (या मेघ) से घोर गर्जन-तर्जन के साथ वृष्टि हो रही है।। 3।। जैसे माता शिशु के पास जाती है, जैसे दुग्धवती गौवें बछड़े के पास जाती हैं वैसे ही शब्द करती हुई तुम अन्य नदियों के पास जाती हो। युद्धशील राजा के समान ही इन सेचन करने वाली नदियों को साथ लेकर तुम आगे बढ़ती हो।। 4।।"

इन तीनों मन्त्रों में पर्वत से निकल कर शस्यशालिनी जनपदों में होकर बहने वाली सिन्धु का जन-जीवनोपयोगी विवरण है।

आगे के दो मन्त्रों (5 और 6) में नदियों के नाम साक्षी के रूप में भौगोलिक क्रम में गिनाए गए हैं। लेकिन इनके भौगोलिक क्रम को स्वीकार करने के बाद भी इनकी पहचान का उपक्रम नहीं किया जाता है वरन् गोलमाल करके सभी को

पंजाब की नदियाँ कह दिया जाता है। यहाँ हम पहले पाँचवें मन्त्र को देंगे फिर आधुनिक विद्वानों द्वारा किये गए अर्थ देकर अपने द्वारा किए गए अर्थ को देंगे जिससे पाठक को अपना अभिमत बनाने में सुविधा होगी।

**इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।**
**असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया॥ 5॥**

इस मन्त्र में नदियों को नाम लेकर सम्बोधित किया गया है। सातवलेकरजी के अनुसार इन्हें सात समूहों में नामित कर स्तुति स्वीकार करने की बात कही गई है जो इस प्रकार है : "हे गंगे! हे यमुने! हे सरस्वति! हे शुतुद्रि! हे परुष्णि! हे असिक्न्या के साथ मरुद्वृधे! हे वितस्ता, सुषोमा इनके साथ आर्जकीया! तू और ये सात नदियाँ हमारे इस स्तोत्र को स्वीकार कर सुनो।। 5।।" इस मन्त्र में कहीं भी सात शब्द नहीं आया है फिर भी सातवलेकरजी ने यहाँ सात की युति बैठाने का प्रयास किया है। एच.एच.विल्सन के अनुवाद में इस प्रकार कहा गया है : "Accept this my priase : *Gaṅgā, Yamunā, Saraswatī, Śutudrī, Paruṣṇī, Marudvṛdhā* with *Asiknī* and *Vitasta;* listen, *Ārjīkīya* with *Suṣomā."*

वास्तव में यहाँ दश नदियों के नाम आए हैं। इन सभी को भारतीय उपमहाद्वीप की नदियाँ माना गया है और कई का तो, जैसे गंगा, यमुना और सरस्वती का सिन्धु से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। साथ ही ऋग्वेद में ऐसे संकेत हैं कि एक समय ऐसा था जब वितस्ता तथा शुतुद्री भी सिन्धु की सहायक नदियाँ नहीं थीं और वे सीधे समुद्र में गिरती थीं।[3] सरस्वती के तो पर्वत से निकलकर सागर में गिरने का उल्लेख सर्वविदित ही है।[4] भूगर्भ वैज्ञानिकों का यह मानना है कि किसी समय राजपूताना समुद्र था। यमुना भी किसी समय पश्चिम वाहिनी थी तथा सरस्वती की सहायक नदी थी। सरस्वती नदी घाटी में भूगर्भिक उद्वेलनों के कारण विपाशा और शुतुद्री पश्चिम की ओर मुड़कर सिन्धु में जा मिली और यमुना पूर्व की ओर मुड़कर गंगा में जा मिली। जो भी हो इन दस नदियों में पाँच (गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री तथा वितस्ता) का सिन्धु से कोई मतलब नहीं था। अतः वे सभी मिलकर सप्तसिन्धु का निर्माण करती थीं यह भी सन्दिग्ध है। अभी तक सभी विद्वानों का यही मानना है कि पंजाब ही सप्तसिन्धु था।[5] पंजाब को सबसे पहले सप्तसिन्धु बताने का श्रेय मैक्समूलर को दिया जाता है लेकिन जिम्मर का कहना है कि 'इनकी पहचान के लिए *कोई जोर न दिया जाय क्योंकि* ***ऋग्वेद*** *तथा बाद में सात शब्द एक पसन्द की संख्या थी।*'[6] इस कुतर्क का कोई जोड़ नहीं है क्योंकि ऋग्वेद ही नहीं **अवेस्ता** में भी *हफ्त हिन्दवः* नाम एक स्थानवाची शब्द मिलता है। सात नदियों की (केवल संख्या नहीं) अवधारणा समस्त एशिया में बहुत बाद तक लोकप्रचलित रही इसका प्रमाण हम आगे देखेंगे जब रूस में *सेमी रेच्यै* या सात नदियों के प्रदेश की चर्चा करेंगे। इसके साथ ही हम ऋषि सिन्धुक्षित के भौगोलिक ज्ञान पर भी सन्देह नहीं कर सकते। लेकिन ऐसा लगता है कि विद्वत्वर्ग अभी भी जिम्मर की सलाह का पालन किये जा रहा है कि इनकी पहचान पर जोर न दिया जाय। इन नदियों की पहचान का कार्य एक जटिल गुत्थी है जिसके सुलझाने में भूतपूर्व ब्रिटिश भारत के बाहर खोज करनी पड़ेगी, जो अब तक एक वर्जित कार्य माना जाता था।

पाँचवें मन्त्र में गंगा, यमुना और सरस्वती के अतिरिक्त पंजाब की पाँच नदियों (शुतुद्री, परुष्णी, असिक्न्या, मरुद्वृधा तथा वितस्ता) के नाम गिनाने के बाद भी दो नदियाँ, आर्जीकीया और सुषोमा बच रहती हैं, जिनकी पहचान न करके किसी प्रकार पंजाब की ही नदियाँ कहकर छुट्टी पा ली जाती है। लेकिन हमारा विचार है कि पंजाब की पाँच नदियों का नाम

लेने के बाद (वितस्ता के बाद) सिन्धु का नाम आना चाहिये था लेकिन उसे शायद इसलिए छोड़ दिया गया क्योंकि उसकी स्तुति में उसका ही नाम साक्षी के रूप में नहीं दिया जा सकता था। इसके बाद जिन नदियों के नाम आए हैं उनकी गणना सीधे उत्तर की ओर से शुरू की गई है। तथा इसके बाद पुनः सिन्धु की सहायक नदियों तक आने की नीति अपनाई गई है। यदि इसे स्वीकार करें तो आर्जीकीया तथा सुषोमा, इन दोनों नदियों को भौगोलिक क्रम में उत्तर में मेरु के समीप की नदियाँ मानना चाहिए। यास्क ने सुषोमा को ही सिन्धु बतला दिया है लेकिन यह किसी ज्ञात तथ्य पर आधारित न होकर केवल भाषाशास्त्र पर आधारित अनुमान मात्र लगता है। इसी प्रकार आर्जीकिया के विषय में भी उन्होंने भाषाशास्त्रीय अनुमान ही प्रस्तुत किए हैं। एक बार वे उसे विपाशा बताते हैं फिर ऋजिक पर्वत से निकली हुई (**ऋजीकप्रभवा वा**) तथा ऋजुगामिनी (या सीधे चलने वाली नदी) कहते हुए पुनः विपाशा का सम्बन्ध विश्वामित्र की कथा की ओर संकेत करते हैं। इससे ऐसा लगता है कि इनके विषय में निश्चयपूर्वक कहने के लिए उनके पास कुछ खास नहीं है। सुविधानुसार कोई भी अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। सुषोमा तथा आर्जीकीया, इन दो नदियों के नाम ऋग्वेद में दो अन्य स्थानों पर भी एक ही साथ आते हैं तथा दोनों ही स्थानों पर इसका सम्बन्ध सोम के साथ बताया गया है जो मेरु के पास ही मिलता था। **ऋग्वेद** (8.7.29) में तो सुषोमा, आर्जीकीया तथा वस्त्यावति, इन चारों को ही सोम प्राप्ति के स्थल कहा गया है तथा 8.64.11 में भी पहले तीन नामों का उल्लेख सोम के सन्दर्भ में हुआ है। इस प्रकार यह सुनिश्चित हो जाता है कि ये दोनों ही नदियां मेरु या उसके समीप से निकलती हुई नदियाँ थीं, न कि पंजाब की कोई अज्ञातनामा नदियाँ। हमने शर्यणावत, जिसको **मत्स्यपुराण** शरवन कहता है, की पहचान आधुनिक जेरवश्न (जरफ्शान) से की ही है जो उत्तरी ताजिकिस्तान में पामीर-अलाई पर्वत शृंखलाओं के मध्य स्थित है। इस प्रकार सुषोमा तथा आर्जीकीया, इन दोनों नदियों की उत्तरी पहचान सुनिश्चित हो जाती है।

इसके बाद का छठाँ मन्त्र और अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें नदियों का क्रम उत्तर से ही (आर्जीकीया तथा सुषोमा के बाद से) शुरू करके भौगोलिक क्रम में दिया गया मानना पड़ेगा क्योंकि पाँचवें मन्त्र की नदियों के नाम भी भौगोलिक क्रम में दिए गए हैं। इसके अर्थ तथा तात्पर्य में विवाद होने के कारण हम यहाँ इस मन्त्र को दे रहे हैं फिर विद्वानों द्वारा दिया गया अनुवाद तत्पश्चात् अपना विश्लेषण देंगे जिससे पाठकों को अपना मत निर्धारित करने का विकल्प बना रहे।

**तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेता त्या।**
**त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे॥ 6॥**

सातवलेकरजी द्वारा दिया गया परम्परागत अर्थ : 'हे (सिन्धो) सिन्धु! ***(त्वं क्रमुं गोमतीं यातवे प्रथमं तृष्टामया सजूः)*** तू गमनशीला गोमती नदी को मिलने के लिये पहले तृष्टामा नदी के साथ चली। अनन्तर ***(सुसर्त्वा रसया श्वेतया कुभया मेहत्न्वा)*** तू सुसर्तू,रसा, उस श्वेती, कुभा और मेहत्नु नदियों के साथ मिलती हो। ***(याभिः सरथं ईयसे)*** फिर तू इनके साथ एक ही रथ पर आरूढ़ होकर चलती हो—अर्थात् इनके साथ मिलकर बहती हो।'' विल्सन के अनुवाद में भी यही कहा गया है "You, Sindhu, in order to reach the swift-moving Gomati, have united, yourself first with Tṛṣṭāmā: (now be united) with the Sasartu, the Rasa, the Śveti, the Kubha, and the Mehatnu, in conjuction with which streams you do advance."

सायण के आधार पर किया गया यह अर्थ सटीक इसलिए नहीं बैठता क्योंकि इन सभी को सिन्धु की सहायक

तो बना दिया गया है लेकिन इनकी पृथक्-पृथक् पहचान का कोई प्रयास किया ही नहीं गया। लेकिन सायण के अन्वय की ओर ध्यान दें तो बातें कुछ अधिक स्पष्ट हो जाती हैं :

**सायणः तृष्ट अमया। प्रथमम्। यातवे। सजूः। सुसर्त्वा। रसया। श्वेत्या। त्य। त्वम्।**
**सिन्धो इति। कुभया। गोमतीम्। क्रुमुम्। मेहत्न्वा। सरथम्। याभिः। ईयसे॥ 6॥**

इसके अनुसार "तुष्टामा ***( तृष्ट अमया ) ( प्रथमं )*** सबसे पहले ***( यातवे प्रतियातुं पर्वतादवरूढा )*** पर्वत से आरूढ़ होकर आती है। (बाद में) सुसर्तु, रसा और श्वेता साथ हो लीं। हे सिन्धु तुम भी कुभा, गोमती, क्रमु और मेहत्नु के साथ रथ पर चढ़कर जाती हो।"

यहां पर "तुष्टामा, सुसर्त्वा, रसा तथा श्वेत्या" ये चारों नदियाँ सिन्धु की सहायक नदियाँ कहीं गई हैं। लेकिन सायण ने भी यदि ऐसा कहा है, जैसा कि उनके भाष्य से लगता है कि कहा है, तो निश्चय ही समुचित जानकारी के अभाव में कहा है क्योंकि उनके समय[7] तक पुराणों और महाभारत आदि में वैदिक संस्कृति के तत्वों को दक्षिण एशिया (भारतवर्ष) की सीमा के अन्दर ही समेटने के प्रयास किये जा रहे थे। यह बात **महाभारत** के वनपर्व (अध्याय 83) के कुरुक्षेत्र माहात्म्य से स्पष्ट हो जाती है जिसमें ऐसे सभी तीर्थों को वहाँ दिखाया गया है जिन्हें वहाँ नहीं होना चाहिए। सायण के भाष्य में अनेक ऐसे स्थल आते हैं जहाँ उन्होंने अपने समय में प्रचलित प्रथाओं के अनुसार ही अर्थ किया है अन्य शास्त्रों तथा इतिहास का ध्यान नहीं रखा है। उदाहरण के लिए **अथर्ववेद** (8.2.21) के *शतं तेऽयुतं* मन्त्र के भाष्य में देख सकते हैं।[8] साथ ही उनके भाष्य पर टिप्पणी लिखने वाले भारतीय विद्वानों ने आधुनिक यूरोपीय विद्वानों के अनुकरण पर अपने को ढालने का प्रयास किया है। अपना स्वतन्त्र मन्तव्य बहुत कम दिया है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि इतिहास और पुराण को आधार मानकर आधुनिक वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक ज्ञान की कसौटी पर कसकर वेदों के मन्त्रों की व्याख्या की जाय। अस्तु!

इस मन्त्र में दो भाग हैं। प्रथम भाग में जो चार नदियों के नाम (तुष्टामा, सुसर्त्वा, रसा तथा श्वेत्या) आते हैं उन्हें सिन्धु की सहायक न मानकर स्वतन्त्र नदियाँ मानना उचित होगा जो कि *उदीच्य भारत* के मेरुक्षेत्र में बहती थीं और इन्हें पौराणिक परम्परा के अनुसार पृथिवी की प्रथम नदियाँ माना गया है। यहाँ *प्रथमं यातवे* कहकर इसी बात का संकेत दिया गया है। यह सत्य है कि आज इनकी पहचान निश्चयपूर्वक नहीं की जा सकती क्योंकि तब से अब तक अनेक भूगर्भिक परिवर्तनों के कारण उनके मार्ग बदल चुके हैं तथा ऐतिहासिक कारणों से नाम भी कई बार बदले गए हैं। ऐसी परिस्थितियों में उनकी पहचान के लिए अंगुलिनिर्देश करना भी जोखिम भरा काम है। लेकिन ऐतिहासिक शोध के लिए इस प्रकार के खतरे उठाना चाहिए।

यहाँ तुष्टामा की पहचान आमूदरया या आक्सस नदी से की जा सकती है जिसे पुराणों में मेरु से निकलने वाली चक्षु नदी कहा गया है।[9] यह पहले कैस्पियन सागर से मिलती थी अब अराल सागर में मिलती है।[10] सीर दरया या जेक्सार्टस नदी, जो आमू के उत्तर में पामीर के पहाड़ों से निकलकर अराल सागर में मिलती है, के लिए सबसे प्रबल प्रत्याशी है सुसर्त्या। पुराणों में *भद्रा* नामक एक नदी को उत्तर की ओर बहती हुई बताया गया है जिसे उत्तरकुरुवर्ष में बहती हुई उत्तरी समुद्र में मिलने वाली नदी कहा गया है। लेकिन सीर दरया के साथ ऐसा नहीं है।

## रसा की पहचान

रसा का नाम **ऋग्वेद** (1.112.12; 4.43.6; 5.41.15, 53.9; 8.72.13; 9.41.6; 10.75.6, 108.1, 121.4) में आया है। सरमा-पणि सम्वाद (10.108.2) में स्पष्ट रूप से रसा को नदी कहा गया है जिसको पार करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। एक जगह रसा का नाम अनितभा, कुभा, क्रुमु तथा सिन्धु के साथ आया है जिसमें फैली हुई सरयू (परिष्ठात्सरयुः) का भी नाम शामिल है।[11] इनमें कुभा तथा क्रुमु अफगानिस्तान की काबुल तथा कुरुम नदियाँ मानी गई हैं जो सिन्धु से मिलती हैं। रसा और अनितभा की पहचान नहीं हो पाई है। सम्भावना यही है कि ये उत्तर की नदियाँ होंगी। पणि-सरमा सम्वाद वाले सूक्त में पणि सरमा से पूछते हैं कि तुम किस उद्देश्य से रसा के जल को पार करके आई हो।[12] इन्द्र की दूती सरमा के रसा नदी पार करके पणियों के पास जाने की घटना से यह अनुमान लगाया जा सकता है पणि इसी क्षेत्र में रहते रहे होंगे। वेदिक इन्डेक्स के लेखकों ने इस पर प्रकाश डाला है।[13] वे कहते हैं 'हिलेब्रान्ट के मत से ये वास्तविक कबीले लगते हैं। स्ट्रेबो के एक उद्धरण में पर्नियन्स (पणि) के साथ दहये (दास) का भी उल्लेख है।' **ऋग्वेद** में भी इन दोनों के नाम एक साथ आते हैं। अतः इनके स्थान भी पास-पास होने चाहिये। **ऋग्वेद** में एक अन्य स्थल पर पणि पारावतों के साथ आते हैं जिनकी पहचान हिलेब्रान्ट ने टोलेमी के *परावेते* से की है; तथा इसी ऋचा में आये त्वष्टा के पुत्र बृषय की वे एरियन के *बरसयतेस* से तुलना करते हैं; इनकी पहचान पर्नियन्स और दहियों के रहने के स्थान से की जा सकती हैं जो केस्पियन सागर का क्षेत्र है। ईरानी इनको प्रान्त के रूप में (स्थानवाची) मानते थे। "जिम्मर तथा मेयेर का विचार है कि दास सामान्यतया शत्रु के लिये आता है लेकिन बाद में ईरान में कैस्पियन के घास के मैदानों के दहये तथा भारत में आदिवासी जनजातियों के लिये इस्तेमाल होने लगा।"[14] वेदिक इन्डेक्स के लेखकों ने रसा नदी की पहचान जेराक्सेस से की है जिसका उल्लेख अवेस्ता के वेन्दीदाद में रन्हा के रूप में किया गया है तथा जो वैदिक रसा का पारसीक रूप है। अब यह जेराक्सेस सीर दरया कहलाता है। उल्लेखनीय है अवेस्ता में रसा को रन्हा कहा गया है तथा उसे हिन्द की सीमा बताया गया है। यस्त 10 में कहा गया है कि "मिथू की लम्बी भुजाएँ विश्वासघात करने वालों को पकड़ लेती हैं चाहे वह पूर्वी भारत में हो या पश्चिमी (भारत में) उसे खींचकर दण्डित करती हैं भले ही वह रन्हा नदी के मुहाने पर हो या धरती के मध्य में।"[15] इस धरती के मध्य को **ऋग्वेद** में *नाभा पृथिव्या* (1.143.4 इत्यादि) कहा गया है जो इला के स्थान (*इलास्पद* 1.121.1 इत्यादि) के लिए आता है। अभी हाल ही में एक और समीकरण प्रकाश में आया है। क्लेजिन नामक विद्वान का कहना है कि वैदिक *रसा* शब्द इन्डो-आर्यन द्वारा लिया गया उधार का शब्द है। यह मोर्डोवियन भाषा के *रवो* शब्द से लिया गया है जो वोल्गा नदी के लिये प्रयुक्त किया जाता है।[16] इस प्रकार रसा के लिये वोल्गा भी एक सम्भावित नाम हो सकता है। लेकिन इससे पणियों के लिये निर्धारित क्षेत्र पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

श्वेत्या को भी इसी प्रकार उत्तरी क्षेत्र की नदी कह सकते हैं। इसकी पहचान पाकिस्तान की स्वात नदी से नहीं की जा सकती क्योंकि **ऋग्वेद** में उसे सुवास्तु कहा गया है जहाँ त्रसदस्यु ने सोभरि काण्व ऋषि को भरपूर दान-दक्षिणा दी थी। (8.19.37)। अतः श्वेता तथा रसा ये दोनों नदियाँ उत्तर की नदियाँ होनी चाहिए।

इस मन्त्र में इसके बाद ही पश्चिम से आकर सिन्धु नदी में मिलने वाली दक्षिणी अफगानिस्तान की नदियों कुभा, क्रुमु, गोमती तथा मेहत्स्नु नदियों का उल्लेख आता है। इसमें पंजाब की नदियों को जोड़ सकते हैं जो अब सिन्धु की सहायक हैं। लेकिन इन सबको सप्तसिन्धु मानने में कठिनाई है।

## अफगानिस्तान का सप्तसिन्धु

यह महत्वपूर्ण बात है कि अलबीरूनी ने ग्यारहवीं शताब्दी में अफगानिस्तान स्थित आमूदरया और उसकी सहायक नदियों को सप्तसिन्धु कहा है। पंजाब के विषय में लिखते हुये वह कहता है कि "चूँकि पाँच नदियों का संगम संसार के इस भाग (पंजाब) में देखने को मिलता है। हमने इसी प्रकार का एक नाम उत्तर में पूर्व उल्लिखित पर्वतश्रेणियों में अवलोकन किया है; तिरमिध से मिलकर बल्ख नदी हो जाने के बाद इसे सात नदियों का संघट्ट कहा जाता है। सोग्दियाना के पारसी इन दोनों बातों को मिला देते हैं। वे कहते हैं कि सातो नदियाँ सिन्ध और उसके ऊपरी बारीदीश भाग है।"[17] इस प्रकार अलबीरूनी भी अफगानिस्तान में बल्ख/बाह्लीक/चक्षु या आक्सस नदी के क्षेत्र में सप्तसिन्धवः की अनुश्रुति की पुष्टि करता है। इसी को वैदिक तथा ईरानी सप्तसिन्धु माना जाना उचित होगा।

अब सुसर्तु और श्वेत्या के पहचान की समस्या बनी रह जाती है। *वेदिक इन्डेक्स* के लेखकों ने इन दोनों को सिन्धु नदी की सहायक नदियाँ कहा है लेकिन पहचान करने का प्रयास नहीं किया है। अतः इनकी पहचान के विषय को अभी अनिर्णीत छोड़ देना ठीक रहेगा।

## ऐर्यानवेजः या आर्यों की भूमि

हमको लगता है कि मेरु का इलावृतवर्ष क्षेत्र ही अवेस्ता का *ऐरानवेज* या *ऐर्यानम वेजः* था; जरथुस्त्र के अनुसार जिसका निर्माण अहुरमज्द ने सबसे पहले किया था जो पारसीकों की मूलभूमि कही गई है तथा पुराण भी इसे ही मूलभूमि मानते हैं।। यश्त के अनुसार यह वही भूमि है जहाँ जरथुस्त्र ने यजतों की बलि दी थी। वेन्दीदाद के अनुसार यहाँ पर दो मास की गर्मी तथा दस मास की सर्दी पड़ती है। यहीं पर अहुरमज्द ने भयंकर सर्दी से बचने के लिये सुरक्षित आश्रय बनाने की सीख दी थी। वेन्दीदाद में सोलह प्रदेशों का उल्लेख है। भारत में भी षोडश महाजनपदों का पारम्परिक उल्लेख मिलता है। जो बौद्धग्रन्थों का सोलहवाँ महाजनपद कम्बुज है उसी को पाणिनी ने पामीर क्षेत्र का कम्बुज कहा है।

पारसियों के अवेस्ता में भी इसे धरती का केन्द्र कहा गया है।[18] वेदों में भी इसे *इळास्पद* तथा *पृथिवी की नाभि* और *धरती का श्रेष्ठ स्थान* कहा गया है। नस्ल और भाषा की दृष्टि से वैदिक आर्य तथा ईरानी आर्य एक ही मूल के थे। भाषा की दृष्टि से अवेस्ता को वैदिक भाषा का एक प्राकृत माना जाता है। अतः इस बात की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ये पारसीक ही असुर वृषपर्वा के वंशज थे जिनकी पुत्री शर्मिष्ठा का विवाह ययाति से हुआ था और जिनके सबसे छोटे पुत्र पुरु को ही ययाति के राज्य का उत्तराधिकार मिला।

आगे चलकर ये दोनों दो परस्पर विरोधी संस्कृतियों के वाहक बन गये। एक ने देवपूजक वैदिक संस्कृति को अपनाया तो दूसरे ने असुरपूजक असुर संस्कृति को। रोचक बात यह है कि आज भी सारे एशिया तथा यूरोप में मोटे तौर पर इनकी पहचान बनी हुई है। अवेस्ता में बुरी आत्मा को *दएव* (देव) कहा गया है; जो वर्तमान पर्सियन में *द्रय* बन गया और यह परम्परा पश्चिम एशिया और अरब तक के देशों के भी धर्मों में प्रचलित है। इन सबमें देव या तत्सम शब्द दुष्ट आत्मा के प्रतीक माने जाते हैं। दूसरी ओर *देव* शब्द भारत के समस्त क्षेत्रों से लेकर उत्तर में स्लाव तथा युरोप के केल्त, ग्रीक तथा लैटिन आदि में समान रूप में अच्छी आत्मा, प्रकाश तथा पूज्य के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। **ऋग्वेद** में *असुर* जो देवों तक के लिए प्रयोग में आया है[19] लेकिन परवर्ती संस्कृत साहित्य में बुरी आत्मा के लिए प्रयोग में आने लगा। इस दृष्टि से वैदिक तथा केल्ट, इलेरियन, लैटिन, स्लाव आदि भाषी-जन एक ही सांस्कृतिक भाषा-कुल के लोग माने जाने

चाहिए जो देव शब्द को अच्छे अर्थों में लेते हैं। लेकिन बीच के क्षेत्र, पश्चिम एशिया (ईरान-ईराक) में देव को राक्षस या दैत्य के रूप में माना जाता है। इस निकष का उपयोग हम यूरोप की जनजातियों को उनकी मुख्य शाखा वैदिक से जोड़ने में कर सकते हैं।

*वेदिक इन्डेक्स*[20] का मानना है कि **ऋग्वेद** में *सप्तसिन्धवः* शब्द सुनिश्चित देश के लिए एक बार आया है तथा सात नदियों के लिये अनेक बार आया है। इन सबको देखने से ऐसा लगता है कि मूल रूप में सप्तसिन्धु अफगानिस्तान की नदियों के लिए ही आया है तथा इन्द्र का मुख्य कार्यक्षेत्र मेरु के आसपास ही विस्तृत था। प्रथम मंडल का 32वाँ सूक्त, जिसमें इन्द्र के पराक्रम का वर्णन है, इन प्राचीन घटनाओं का उल्लेख करता है।

नदी सूक्त में तीन सप्त सिन्धुओं की बात पहले मन्त्र में ही कह दी गई है। इस तीसरे सप्त सिन्धु के लिए कोई खास जानकारी नहीं मिलती। लेकिन राहुल सांकृत्यायन के अनुसार एक सप्तसिन्धु रूस में है जो प्राचीन उत्तरकुरु का क्षेत्र था।

## तीसरा सप्तसिन्धु रूस में

अलबीरूनी द्वारा दसवीं शताब्दी में अफगानिस्तान में आमू दरया या आक्सस क्षेत्र में सप्तसिन्धु की अनुश्रुति का उल्लेख हम कर चुके हैं। अब एक अन्य सप्तसिन्धवः के रूस में होने की चर्चा करते हैं। राहुल सांकृत्यायन मध्य एशिया में भी एक सप्तसिन्धु का उल्लेख कहते हैं जो तुल्स, चु, इलि तथा चार अन्य नदियों की उपत्यका में है। वे लिखते हैं "सम्भवतः इसका मूल नाम सप्तसिन्धु की तरह कुछ रहा होगा क्योंकि रूसी लोग तर्की और मंगोल भाषाओं से अनुवाद करके इसे *सेमी-रेच्ये* (Semi Rechye सात-नदियों का क्षेत्र) कहते हैं जिसका भी यही अर्थ होता है।" वे आगे बताते हैं कि तेरहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में मंगोलों के आक्रमण के पहले इस प्रदेश में बहुत से समृद्ध नगर थे।[21] क्या इसे इस बात का संकेत न समझें कि सप्तसिन्धु की अवधारणा समस्त एशिया के क्षेत्र में परम्परा के रूप में प्रचलित रही है जो रूसी तुर्किस्तान तथा मंगोल भाषाओं से होती हुई तेरहवीं शताब्दी से रूस में भी प्रचलित की गई।

हम इली नदी में मनुपुत्री इला के नाम की झलक देखते हैं। उल्लेखनीय है कि यूः चीः नामक कबीला, जो आगे चलकर कुषाण नाम से प्रसिद्ध हुआ, तथा जिन्हें तुखार भी कहा जाता है, किसी समय इसी क्षेत्र में बसता था। डेविड फ्राउले देवी के रूप में इळा की विश्वव्यापकता पर लिखते हैं "पारसी अपने गृह भूमि को इळ कहते हैं। दक्षिण-पश्चिमी ईरान में *एलम* एक अति प्राचीन राज्य था जो सुमेरिया की तरह इसी से सम्बन्धित शब्द हो सकता है। तमिल अपने राज्य को *इळ* या *एलम* कहते हैं। ईश्वर के लिए सामी शब्द इलोहीम में *इल* की तरह अल्लाह *(अल इल्लाह)* भी वैदिक इल या इल् (अग्नि) से सम्बद्ध हो सकता है। फोनीशियन भी इल् की पूजा करते थे। उनका देवता बआल ब-इल है। अतएव इल शब्द मानवता का सर्वाधिक पुराना तथा स्थिर देववाचक शब्द है। यह सुझाता है कि इलावर्त मानवता की, विशेष रूप से आध्यात्मिक उद्भव तथा मार्गदर्शन की मूलभूमि है।"[22] इला का स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग दोनों के रूप में प्रयोग इसकी व्यापकता की ओर ही संकेत करता है।

## पुराणों में सात नदियों के विभिन्न कालों में बदलते नाम

जब हम सप्तसिन्धवः के भौगोलिक परिस्थितियों तथा नदी आदि के बारे में विचार करते हैं तब इसमें अनेक परतें

दिखाई पड़ती हैं जिनमें अत्यन्त दीर्घकाल के अन्तराल में कई बार बदलाव आये। इन नामों में आए परिवर्तन हमारे पुराणों एवं अन्य साहित्य में बड़ी निष्ठापूर्वक दर्ज किए गए हैं[23] जिसके कारण आज हम इस स्थिति में हैं कि इन नदियों के नामों के कम से कम तीन स्तरों की पहचान कर सकें। पुराणों की एक विशेषता यह है कि अलग-अलग कालों के तथ्य अंकित तो कर लिए जाते हैं लेकिन पुराने को भी बनाए रखा जाता था; जिसके स्पष्ट लाभ हैं। एक अनुश्रुति के अनुसार सात नदियों के नाम इस प्रकार हैं : धरती पर अवतरण के बाद गंगा सात भागों में विभक्त हो गई जिसमें नलिनी, पावनी और ह्लादिनी पूरब जाती हैं; चक्षु, सीता और सिन्धु पश्चिम जाती हैं; तथा भागीरथी या गंगा दक्षिण की ओर जाती है। **महाभारत** में एक जगह सातो नदियाँ इस प्रकार हैं: वस्वौकसर, नलिनी, पावनी, गंगा, सीता, सिन्धु और जम्बू नदी। एक अन्य में गंगा, यमुना, प्लक्षग, रथस्था, सरयू, गोमती और गण्डकी के नाम आते हैं।[24] ध्यान देने की बात यह है कि इन अनुश्रुतियों में इनका भौगोलिक क्षेत्र क्रमशः दक्षिण और पूरब की ओर खिसकता जा रहा है जिसको सुदीर्घ काल में हुए प्राकृतिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य देखना चाहिए। इन नामों में कई कालों की स्थिति के दर्शन किए जा सकते हैं। पाश्चात्य दृष्टि वालों ने इस विविधता का उपयोग भ्रम उत्पन्न करने तथा पौराणिक विवरणों को झूठा सिद्ध करने के लिए किया है जबकि हमें इसमें सुदीर्घ इतिहास के कारण समय-समय पर किये जाने वाले संशोधनों के रूप में लेते हुए इन सभी पाठों को स्वीकार करना चाहिए जो किसी भी इतिहास ग्रन्थ की विशेषता मानी जानी चाहिये। इन पौराणिक इतिहास-ग्रन्थों की सर्वोच्च विशेषता, जिसको इसकी कमी मान कर तिरस्कृत किया जाता है, यह थी कि इसमें पुराने तथ्यों का विलोपन नहीं किया जाता था। यह बहुत दूरदर्शितापूर्ण नीति थी जिसके कारण आज हम इतिहास की विलुप्त परतों को उठाकर उनके नीचे झाँक सकते हैं।

## नदीसूक्त और सैन्धव सभ्यता की भौगोलिक समानता

अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि **ऋग्वेद** का 'नदीसूक्त' वैदिक संस्कृति के भौगोलिक व्याप्ति का दस्तावेज है जो गंगा से शुरू होकर उदीच्य (उत्तर) में रसा या सीर दरया तक विस्तृत था। पुरातत्व भी इसकी पुष्टि करता है। गंगा नदी के पश्चिम से लेकर उत्तरी अफगानिस्तान के शोर्तुघई तक फैले सैन्धव सभ्यता के पुरावशेष इसी कहानी को दोहरा रहे हैं। इस *नदीसूक्त* के माध्यम से साहित्य को पुरातत्व का समर्थन प्राप्त हो जाता है।

## संदर्भ


1. *कोसल का इतिहास एवं संस्कृति,* सम्पादित डा0 ठाकुर प्रसाद वर्मा, 2010, अयोध्या (फैजाबाद), पृ0 38 तथा आगे।
2. ऋग्वेद 10/75/1।
3. ऋग्वेद 3/33/1।
4. ऋग्वेद 7/95/2।
5. श्रीकान्त जी. तालागेरि, *द ऋग्वेद ए हिस्टारिकल एनालिसिस,* 204, पृ0 114। डेविड फाउले, *द ऋग्वेद एण्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया,* 203, पृ0 132 पर सरस्वती के पूरब तथा पंजाब से बाहर सप्तसिन्धु को मानते हैं लेकिन प्रमाण नहीं देते।
6. *वेदिक इन्डेक्स* 2, पृ0 424।
7. आचार्य सायण चौदहवीं शताब्दी में कर्नाटक में पैदा हुए थे। वे विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के प्रेरक शंकराचार्य विद्यारण्यस्वामी, (पूर्वनाम मध्वाचार्य) के भाई थे। उनके पिता का नाम मायनाचार्य तथा माता का नाम श्रीमती देवी था। उनके एक अन्य भाई का नाम भोगनाथ तथा बहिन का नाम सिंगला था। डा0 सतीश चन्द्र मित्तल ने *"अविस्मरणीय विजयनगर साम्राज्य एवं महाराजा*

*कृष्णदेव राय''* नामक पुस्तक (2009) में मध्वाचार्य का जन्म 1268 ई0 माना है तथा यह लिखा है कि कुछ विद्वान उनका जन्म 1300 ई0 मानते हैं। इस प्रकार सायणाचार्य को चौदहवीं शताब्दी ईस्वी में रखना होगा तथा यह भी स्वीकार करना होगा कि तब तक वैदिककाल की बहुत सी बातें मिथक का रूप ले चुकी थीं।

8. टी.पी.वर्मा, *द साइन्स ऑफ मनवन्तराज,* 2006, बंगलोर, पृ. 2
9. विष्णुपुराण 2/2/37
10. श्रीकान्त जी. तालागेरि, पृ. 193 तथा डेविड फ्राउले, पृ. 221
11. ऋग्वेद 5/53/9
12. ऋग्वेद 10/108/1 ''रसाया अतरः पयांसि''।
13. *वेदिक इन्डेक्स* 1, पृ. 472-73
14. *वेदिक इन्डेक्स* 1, पृ. 357
15. *कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया* (सेकन्ड इन्डियन एडीसन, 1962) नई दिल्ली, पृ. 291
16. दे0 रविलोचनन जी. 'लिंगुइस्टिक्स एण्ड ओ आई टी : द रियल सिचुयेशन'। इन्टरनेट से लिया गया लेख।
17. एडवर्ड सी. सचाऊ, *अलबीरूनीज इन्डिया,* नई दिल्ली, 1964, पापुलर एडीशन, पृ. 260
18. *कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया* (1), दूसरा भारतीय पुनर्मुद्रण, 1962, नई दिल्ली, पृ. 291
19. ऋग्वेद 3/55/1 से 22 तक के मन्त्रों में सभी महान देवों में एक ही असुरत्व का दर्शन किया गया है।
20. *वेदिक इन्डेक्स* 1, पृ. 424
21. राहुल सांकृत्यायन, *मध्य एशिया का इतिहास,* खण्ड 9, पटना, 1985, द्वितीय संस्करण, पृ. 61-62; डा0 शम्भूनाथ सिंह के *वैदिक जाति का निवास स्थान और भारतीय संस्कृति का स्वरूप,* वाराणसी, 1986, में पृ. 71 पर भी इसका उल्लेख है।
22. डेविड फ्राउले, पृ. 29
23. हमारे पाश्चात्य विद्वानों ने पुराणों को इसलिए गप मानकर निरस्त कर दिया है कि उनमें समरूपता नहीं है। साथ ही वे यह सर्वस्वीकृत अटल नियम मानकर चलते रहे कि भारतीयों में इतिहास की अवधारणा या तमीज ही नहीं थी। इतिहास ग्रन्थ के रूप में पुराणों ने अपने समय का वास्तविक वर्णन किया है। यदि ऐसा न होता तो आज हम इन स्तरों को नहीं खोज सकते थे। बौद्ध ग्रन्थों में भी जहाँ स्थान नामों में कुछ परिवर्तन मिलते हैं वह असावधानी के कारण नहीं वरन् अलग कालखण्डों में संकलित होने के कारण मानना चाहिए।
24. दे0 ऋग्वेद, रवि प्रकाश आर्य तथा के0एल0जोशी द्वारा सम्पादित, दिल्ली, 1997, पृ. 82-83 पर दी गई टिप्पणी।